Global Journal of Multidisciplinary Studies Available online at www.gjms.co.in
Volume 3, Issue3, Feb 2014
ISSN: - 2348-0459

'ब्रिटिश साम्राज्यवाद, साम्प्रदायिकता और राष्ट्र : 'पीढ़िया' के सन्दर्भ में'

संतोष कुमार भारद्वाज

सहायक प्रोफेसर–हिन्दी स्वामी श्रद्धानंद महाविद्यालय

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

अलीपुर, दिल्ली–36

सारांश

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन 'राष्ट्र' निर्माण की प्रक्रिया पर आधारित था, जबकि उसने स्वयं इस प्रक्रिया में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आन्दोलन की बढ़ती हुई ताकत आंशिक रूप से, इस बात पर निर्भर करती थी कि जनता में एक 'राष्ट्र' का अंग होने की चेतना किस हद तक थी, क्योंकि राष्ट्र के हितों हेतु साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने के लिए एक संघर्ष की आवश्यकता थी जो 1857 के संग्राम में ब्रिटिश सरकार को दिखाई दी।

खोज शब्द – राष्ट्र, समाज, शिक्षा

प्रस्तावना

जहां तक हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रश्न है,1857 के विद्रोह के दौरान इस एकता ने ब्रिटिश शासको को विस्मृत ही नहीं किया,उन्हें गहरी निराशा में डूबो दिया। डिजारायली ने पार्लियामेंट में कम्पनी के डायरेक्टरों को धिक्कारते हुए कहा–ष्तुम्हारे शासन में पहली बार हिन्दू और मुसलमान एक होकर तुम्हारे विरूद्ध थे ।"1 इसलिए सन् 1880 के दशक से ही ब्रिटिश सरकार यह कोशिश करती रही कि भारतीय मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल न होने पाएं। लेकिन 1857 के संग्राम के पश्चात् ब्रिटिश सरकार को यह अंदेशा हो गया कि भारत में ब्रिटिश सरकार के हितों को जारी रखने हेतु मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग करना आवश्यक है। इसके लिए ब्रिटिश सरकार ने अपनी हिन्दू–मुस्लिम नीति में आमूल परिवर्तन करते हुए, दोनों के बीच अलगाव के बीज बोना शुरू कर दिया। कालान्तर में, जिसका परिणाम हम भारत–पाकिस्तान के रूप में देखते हैं। यह कहना सर्वथा सत्य है कि भारत में राष्ट्रीय चेतना की जागृति का एक प्रमुख कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति थी, तो भारत में साम्प्रदायिकता के विकास का पूर्ण दायित्व भी उसी पर था। उनकी यह नीति निरन्तर राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर करती रही।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की स्थापना के आरम्भिक वर्षों में ब्रिटिश शासकों की नीति भारतीय मुसलमानों को शिक्षा,

प्रशासन, आर्थिक और व्यवसायिक आदि सभी क्षेत्रों में उपेक्षित तथा उन्हें दबाये रखने की थीं। इससे भारत की मुस्लिम जनता में एक उपेक्षित धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग होने की भावना उत्पन्न होने लगीं। मुसलमानों ने यह अनुभव किया कि ब्रिटिश शासकों की नीति के कारण हिन्दू बहुसंख्यक वर्ग उन्नति कर रहा है, परन्तु मुस्लिम सम्प्रदाय की उपेक्षा की जा रहीं है। इससे मुस्लिम सम्प्रदाय में हिन्दुओं के प्रति द्वेष और ईर्ष्या उत्पन्न होने लगीं।

अमृतलाल नागर इसका प्रमुख कारण पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव मानते हैं क्योंकि 'सनातनधर्मी भारतीय प्रजा वर्ग में अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार पहले से, और अधिक तेजी से आरम्भ हुआ और उसमें राष्ट्रीय चेतना जागी। मुसलमानधर्मी भारतीय कुछ तो विलायतियों के प्रति नफरत के कारण और सामन्ती पतनशीलता के प्रमादवश और पिछड़े बने रहे।'2 अमृतलाल नागर ने यहाँ पर मुसलमानों की तत्कालीन गरीबी और बदहाली को उनके अय्याशी और शौकों से जोड़कर समूची सामाजिक पृष्ठभूमि में देखा है। जिसको, उन्होंने अपने उपन्यास 'पीढ़ियां' में दो पात्रो के वार्तालाप में दिखाया है– 'आपके हिन्दू साहूकारों ने गदर के बाद हमारे ऊँचे से ऊँचे खानदानों का माल लूटकर उन्हें कंगाल...।''हमने क्यों बनाया, साले मुसलमानों की रंडी लौंडो की सोहबत और शराबनोशी ने कंगाल बनाया है सालों को।''[3] जबकि इनके बरक्स हिन्दुओं ने अंग्रेज़ी भाषा को पढ़कर आगे बढ़ने की राह पकड़ने के लिए संघर्ष किया, क्योंकि एक लम्बे समय की गुलामी के भयावह दुष्परिणाम उनके सामने थे। अतः पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से हिन्दू जनता के शिक्षित वर्ग में राष्ट्रीय चेतना विकसित हुई। इससे ब्रिटिश सरकार को प्रतीत हुआ कि यदि हिन्दुओं में राष्ट्रीय चेतना की प्रगति इसी तरह जारी रहीं और बहुसंख्यक मुस्लिम जनता भी इसमें शामिल हो गई तो भारत एक राष्ट्र के रूप में संगठित होकर ब्रिटिश साम्राज्य पर कुठाराघात करने में सफल हो जाएगा। यही नहीं कांग्रेस की स्थापना से ब्रिटिश सरकार की घबराहट और बढ़ गई।

1857 के संग्राम के पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति में परिवर्तन होता है। सन् 1871 में विलियम हन्टर ने, मुसलमानों के प्रति, ब्रिटिश नीति में आमूल–चूल परिवर्तन करने पर जोर दिया। क्योंकि ब्रिटिश सरकार को यह प्रतीत होने लगा था कि भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जागृत हो रहीं है। अतः उसने हिन्दू–मुस्लिम एकता को कमजोर करने के लिए साम्प्रदायिकता को माध्यम के रूप में चुना। चूँकि मुस्लिम सम्प्रदाय पूर्व में ही हिन्दुओं से ईर्ष्या करने लगा था, इसलिए उसका झुकाव धीरे–धीरे ब्रिटिश सरकार की ओर होने लगा। इसका नेतृत्व किया– 'रायबरेली के एक सैय्यद अहमद खां जो अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त थे और ब्रिटिश राज के कर्मचारी रह चुके थे, स्वधर्मियों की अवनति देखकर बहुत दुःखी हुए। उन्होंने पहली बार जोर–शोर से यह बात उठाई कि मुसलमानधर्मी भारतीय प्रजा भी राजनिष्ठा में हिन्दुओं से कम नहीं है। उन्होंने 1885 की कांग्रेस में मुसलमानों को शरीक होने से रोका।'[4] इस सन्दर्भ में अमृतलाल नागर ने

उनके नाम पर लीपापोती किए बिना स्पष्ट तौर पर 'पीढ़ियां' में लिखा भी है कि– '.... यह ताजातौर से अलगाव के कांटे हमारे बुजुर्गवार सर सैय्यद अहमद ने ही बोए थे। उनके अलीगढ़ मूवमेंट की सारी बुनियाद हिन्दू और मुस्लिम को एक ही कौम मानने पर नहीं, बल्कि अलगाव पर थी। वे उन्हीं मुसलमानों के तरफदार थे जो गुजरे जमाने में जागीरदार, मनसबदार वगैरह, वगैरह रहे थे और अंग्रेज़ी हुकूमत में अपना पुराना रौब–दाब खो बैठे थे। सैय्यद साहब इन्हीं अशरफ मुसलमानों के लीडर थे।'[5] वह पूरे मुस्लिम समाज के लीडर नहीं थे। इसके बावजूद सर सैय्यद अहमद खां का प्रभाव उस समय के शिक्षित मुसलमानों पर बहुत गहरा पड़ा। सर सैय्यद अहमद साहब के प्रयत्नों का ही प्रभाव था कि भारतीय मुसलमान ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करने लगे। प्रख्यात इतिहासकार बिपिन चन्द्र ने भी लिखा है कि– 'राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना होने के बाद सर सैय्यद अहमद खां का स्वर बदल गया और यहीं से साम्प्रदायिकता की पहली झलक दिखाई पड़ने लगी। जब यह जाहिर हो गया कि कांग्रेस साम्राज्यवाद के विरुद्ध है तो वायसराय डफरिन और संयुक्त प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने 1887 में उस पर हमला बोल दिया।'[6] और इसके लिए उन्होंने मुहरा चुना सर सैय्यद अहमद खां को। हम देखते हैं कि सर सैय्यद से लेकर मोहम्मद अली जिन्ना तक अनेक मुस्लिम नेता राष्ट्रविरोधी अंग्रेज़ समर्थक और उनके हितों की कठपुतली बने रहे। फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार को हिन्दू–मुस्लिम एकता में फूट डालने का मौका मिला। लार्ड कर्जन जैसे अवसरवादी वाइसराय ने इसका फायदा उठाया। उसके शासनकाल तक यह स्पष्ट हो गया था कि भारत में राष्ट्रवादी आन्दोलन काफी विकसित हो गया है। अंग्रेज़ों की 'फूट डालो' की नीति इस राष्ट्रवाद को दबाने तथा उसके मार्ग में रोड़ा अटकाने का एक उत्तम साधन थी। इसीलिए 'लार्ड कर्जन के जमाने के आते–आते अंग्रेज़ हुक्कामों ने हिन्दू और मुसलमानों में फूट पैदा करके कांग्रेस मूवमेंट को कमजोर बनाने के लिए बंगाल का बंटवारा कर दिया। इसके बाद लार्ड मिण्टो ने पृथक निर्वाचन पद्धति चलाकर हिन्दू–मुस्लिम समस्या और जटिल कर दी। सरकारी प्रचार से दोनों धर्मों के बीच एक बड़ी खाई क्रमशः पैदा होने लगी।'[7] और मुस्लिम साम्प्रदायिकता को उत्तेजित करने वालों ने इसका भरपूर प्रचार किया। भारतीय नेताओं की लाख कोशिशों के बावजूद ब्रिटिश सरकार की चाल कामयाब हो गई और हिन्दू–मुसलमान अलग–अलग हो गए, जिसका पता अमृतलाल नागर के इस कथन से चलता है– 'ये आप गलत फरमा रहे हैं जनाबे आला। हिन्दुओं और मुसलमानों की तहजीबोतमद्दुन में दिन और रात का फर्क हैं आप पूरब में सिर झुकाते हैं, हम पश्चिम में। हमारा आपका मेल हो ही नहीं सकता। लार्ड मिण्टो ने सेपरेट एलेक्टोरेट चलाकर बहुत अच्छा किया।'[8] अमृतलाल नागर ने उल्लेख किया है कि उस समय के अधिकांश मुसलमान इस बात के समर्थक थे– 'खासकर–अलीगढ़ नीति का मुस्लिम सामंती वर्ग जो अपनी हुकूमत छीने जाने के कारण पहले से अंग्रेज़ों से नाराज था, अब

इस बात पर खीजने लगा कि जो हिन्दू प्रजा कल तक उनके अधीन रहकर मुंह से चुकारा नहीं निकालती थी, उसी वर्ग के लोग अब अंग्रेज़ी पढ़–पढ़कर उन्हीं के ऊपर हुकूमत कर रहे हैं। यहीं से हिन्दू–मुस्लिम दंगों की शुरूआत हुई।’[9] प्रख्यात आलोचक देवेन्द्र चौबे ने लिखा है कि– ‘यहाँ नागर जी अंग्रेज़ों की उस नीति की ओर संकेत करना चाहते हैं, जिसके तहत उन्होंने हिन्दुस्तान पर वर्षों तक शासन किया। मुस्लिम सम्प्रदायवाद का विकास भी इसी के दौरान हुआ। इसके पीछे भी अंग्रेज़ों की ही भूमिका थी।’[10]

अमृतलाल नागर का मानना है कि लार्ड मिण्टो के पृथक निर्वाचन मण्डल की चाल में फंसकर हिन्दू–मुसलमान एक–दूसरे से ईर्ष्या एवं नफरत करने लगे। ब्रिटिश सरकार ने सन् 1905 के स्वदेशी आन्दोलन से उत्पन्न ‘राष्ट्रीय चेतना’ को छिन्न–भिन्न करने के लिए हिन्दू–मुस्लिम नफरत को हवा दे दी– ‘मंदिरों में गाय और मस्जिदों में सुअर काटकर फेंके जाने की कुटिल ब्रिटिश चाल से धार्मिक तनाव आरम्भ हुआ। पारस्परिक उत्तेजना का जामा पहनकर धर्म–अधर्म बन गया...।’ ...‘वहाँ महादेव की खोपड़ी पर कोई गाय का कटा सिर चढ़ा गया है। बड़ी सनसनी फैली है। काफिर साले बमक रहे हैं, नौ–नौ बांस उछल रहे हैं। इनकी माँ... ।’[11] यह हाल हिन्दुस्तान के कोने–कोने में था। ‘नफरत’ की बलि–वेदी पर हिन्दू और मुसलमान यह भूल गए कि वह एक ही राष्ट्र में रहते हैं और अपने ही भाइयों की बलि दे रहे हैं। नागर जी का नगर लखनऊ भी साम्प्रदायिकता की लपटों से नहीं बच सका। वह सआदत गंज में दोनों सम्प्रदायों के बीच फैले तनाव को अंग्रेज सरकार का ही काम मानते हैं। ‘पीढ़ियां’ उपन्यास का पात्र जयंत टण्डन उत्तेजित भीड़ से स्पष्टतः कहता है– ‘ये काम पुलिस से करवाया गया है बाबाजी, आप समझते क्यों नहीं हैं। ये हमारे देश में स्वदेशी और बायकाट का जो नया आन्दोलन चला है, उसे दबाने के लिए अंग्रेज़ हमारे अंदर फूट डलवा रहे हैं।’12.. ‘ये अंग्रेज़ हमारे पुराने भेद–भाव को नये सिरे से भड़का रहे हैं। आप समझते हैं, किसी बड़े अंग्रेज़ हाकिम ने हिन्दुस्तानी कोतवाल को इशारा किया होगा, कोतवाल ने थानेदार को, थानेदार ने पुलिसिए को और पुलिसिए ने किसी कसाई से गाय का सिर कटवा कर शिवजी पर चढ़ा दिया। इसमें हिन्दू मुसलमान का प्रश्न ही नहीं है, प्रश्न तो हमारी धर्म भावना को मिथ्या रूप से भड़काने का है। आज शिवाले को अपवित्र किया, कल किसी मस्जिद को सुअर काट के अपवित्र करवा देंगे...।’[13] हालाँकि जयंत टण्डन ने हिन्दू–मुस्लिम दंगे को रोकने की भरपूर कोशिश की, लेकिन अंग्रेज़ों की लगाई साम्प्रदायिकता की आग इतनी आसानी से कहाँ बुझने वाली थी। इसने अपनी घृणित ज्वाला में लखनऊ के एक कस्बे में अपना असर दिखा दिया– ‘एक लकड़ी वाले की टाल जला दी गई, जिन्दा आदमी और बच्चे उसमें झोंके गए। शुरू में दस बीस मुसलमान ही लूटे, मगर बाद में कस्बे की हिन्दू बस्ती पर कयामत के बादल बरस पड़े। धनिकों की हवेली टूटी, आग लगी, स्त्रियों और धन सम्पदा की लूट भी हुई। पच्चीस हजार की आबादी वाला कस्बा भूतों

का मनहूस डेरा बन गया।'[14] यह हालात पुरे हिन्दुस्तान की थीं।

अमृतलाल नागर अपने उपन्यासों में इस बात की ओर संकेत करते हैं कि जब–जब राष्ट्रीय आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा, तब–तब ब्रिटिश साम्राज्य ने 'साम्प्रदायिकता' को बढ़ावा देकर राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर किया। चाहे वह स्वदेशी आन्दोलन 'असहयोग आन्दोलन', 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' या 'भारत छोड़ो आन्दोलन' आदि हों। जिसकी तरफ संकेत करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार बिपिन चंद्र ने भी लिखा है कि– 'फरवरी सन् 1922 में असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया गया। इससे लोगों में निराशा फैली। अवसाद के इसी दौर में साम्प्रदायिकता ने अपना सिर उठाया। 1922 के बाद देश में साम्प्रदायिक दंगे जल्दी–जल्दी होने लगे। पुराने साम्प्रदायिक संगठनों के मुरझाए हुए बिखें लहलहाने लगे, कुछ नए भी बने।'[15]और यह क्रम लगातार चलता ही रहा ।

ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन के बरक्स हमेशा साम्प्रदायिकता को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। सरकार को जब भी यह लगा कि भारतीय राष्ट्रीयता उत्ताल पर है उन्होंने तुरन्त साम्प्रदायिकता को ढाल बनाकर भारतीयों का दमन किया। जिसका उदाहरण भगत सिंह आदि की शहादत के बाद के दिनों में देखने को मिला। इसी प्रसंग में नागर जी ने लिखा है कि– ''...मुझे शक है जिस तरह सन् बाइस–तेइस में इन्होंने हिन्दू–मुसलमान के भाई–भाई के नारे को उन्हीं के खून में डुबोया था। उसी तरह भगत सिंह वगैरह की शहादत से पैदा हुए जोश को दंगों में बहा ले जाएंगे।''[16] हालाँकि राष्ट्रीय नेताओं की शंका सच साबित हुई और पूरे हिन्दुस्तान में हिन्दू–मुस्लिम दंगे शुरू हो गए। अमृतलाल नागर ने लिखा है कि गणेश शंकर विद्यार्थी उस समय कानपुर में 'प्रताप' पत्रिका निकाल रहे थे। उन्होंने अपनी पत्रिका के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य का न केवल विरोध किया, अपितु साम्प्रदायिक दंगों में, हिन्दू–मुस्लिम जनता को बचाने हेतु अपने हिन्दू–मुस्लिम सहयोगियों के साथ निकल पड़े – 'गणेश जी ने कुछ मुस्लिम दीन–हीन परिवार बचाए, इसी तरह मुसलमान आतताइयों के चंगुल से हिन्दुओं की रक्षा की– 'मेरे भाइयों, ये लड़ाई हमारे हिन्दू–मुसलमान की नहीं, यह अंग्रेज़ सरकार ने किराये के गुण्डे भेजकर लूटपाट शुरू करवाई है। हम शरीफ लोगों को इससे बचना चाहिए। आखिर इतना तो हम लोग समझने ही लगे हैं कि भगत सिंह वगैरह की फांसी का अपना बड़ा जुल्म, छिपाने के लिए हमारी कौमियत को बांट देने के लिए इन्होंने यह जाल रचा है, मैं अगर गलत कहता हूँ तो आप मेरा सिर कलम कर दें।'[17] यहाँ अमृतलाल नागर ने गणेश शंकर विद्यार्थी के बहाने 'साम्प्रदायिकता' के वास्तविक कारणों तथा घिनौने चेहरे को उभारा है। उनका मानना है कि साम्प्रदायिकता का कोई राष्ट्र, धर्म नहीं होता, उसका तो बस एकमात्र धर्म होता है– घृणा। इसी घृणा एवं नफरत को खत्म करने के लिए गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे वीरों ने अपनी शहादत दी। यही नहीं राष्ट्रवादियों को जहाँ कहीं साम्प्रदायिकता

की संकीर्णता सिर उठाती दिखाई दे जाती, उसे राष्ट्रीय चेतना की सामूहिक अभिव्यक्ति के मार्ग में काला नाग समझकर उसका फन कुचलने का पूरा प्रयास किरते। इस स्वार्थ–प्रवृत्ति की भर्त्सना खुले आम की जाती, राष्ट्रीय एकता के मार्ग में साम्प्रदायिकता आड़े न आ सके इसके लिए हर संभव प्रयास किए जाते।

यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अंतर्गत बीसवीं सदी के आरम्भ से लेकर पूरे चार दशकों तक साम्प्रदायिकता ने जिस हठधर्मिता का रूख अपनाकर आन्दोलन के मार्ग में रोड़े अटकाने का सत्त प्रयास किया, उसके पीछे स्पष्टतः ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का हाथ था। क्योंकि उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम पृथ्कतावाद को यथासंभव बढ़ावा दिया। जिसके परिणामस्वरूप मुस्लिम लीग का जन्म हुआ और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू महासभा का। अमृतलाल नागर ने साम्प्रदायिकता के प्रसंग में इन संस्थाओं पर पुनर्विचार किया है। वे कहीं–न–कहीं राष्ट्र को बांटने में मुस्लिम लीग की नीतियों को जिम्मेदार ठहराते हैं। इसके साथ–साथ उन्होंने सर सैय्यद अहमद को भी इसका जिम्मेदार माना है– 'सर सैय्यद अहमद तो गदर के बाद से ही तमाम शहजादों और शहजादियों की बर्बादी पर टेसुए बहाते हुए अंग्रेज़परस्त हो गए। ये–टू–नेशन की हवा अंग्रेज़ी हुकूमत के चकाबू में फंसकर इन्हीं ऊंचे तबके वाले मुसलमानों ने उठाई और उसके लिए अंग्रेज़ों की शह उन्हें बराबर मिलती रही।'[18] इसी का परिणाम था कि 'सन् 1906 में ऑल इंडिया मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। इसके संस्थापकों में से कुछ बड़े जंमीदार, भूतपूर्व नौकरशाह और आगा खां तथा नवाब मोहसिन–उल–मुल्क जैसे अभिजात–वर्गीय लोगों को मुस्लिम लीग का चरित्र सरकारपरस्त, साम्प्रदायिक और अनुदारवादी था।'[19] नागर जी ने भी अपने साहित्य में बार–बार जोर दिया है कि मुस्लिम वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले उच्च वर्ग के ही मुसलमान थे। जबकि निम्न व मध्य वर्ग के मुसलमानों की निष्ठा भारत के प्रति ही रही। इसलिए आज़ादी के बाद भी बहुसंख्यक मुसलमानों ने भारत में ही रहना पसन्द किया।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने मुस्लिम लीग के रूप में एक ऐसा कोढ़ हिन्दुस्तान की छाती पर पैदा कर दिया, जिसके फूटने से भारत दो खंडों में विभाजित हो गया। 'पीढ़ियां' उपन्यास में नागर जी इसकी पृष्ठभूमि पर बात करते हैं कि मुस्लिम लीग ने सन् 1936 के नए शासन विधान के अंतर्गत मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भड़काने के लिए लखनऊ के लालबाग में एक सभा की.... जिसमें कभी के राष्ट्रवादी मोहम्मद अली जिन्ना अब हिन्दू–मुसलमानों के अलगाव के पैगम्बर बनकर बोल रहे थे– 'पिछले दस सालों में हिन्दुआनी कांग्रेस की पालिसीज ने भारत के मुसलमानों को अलग–थलग कर दिया है और जिन छः प्रदेशों में उनका बहुमत है वहाँ अपनी सरकार खड़ी करके उन्होंने.... हमें बिना शर्त अपनी माँगों के आगे झुकने को मजबूर कर रहे हैं।.... समय को देखते हुए जो पाठ मैं मुसलमानों को सीखने के लिए कहूँगा वह यह है कि बहुत देर हो जाने से पहले हमको अपनी राह चुन लेनी चाहिए। अब वह वक्त आ गया है जब

हम अपनी सारी शक्तियां बटोरकर अपना संगठन बनाए और उस शक्ति को विकसित करने में सब कुछ छोड़कर जुट जाएँ।'[20]उल्लेखनीय है कि लखनऊ की सभा में जिन्ना ने अपनी पूर्वगामी नीतियों का संकेत दे दिया और इस नीति को कार्यान्वित करने एवं भारत–विभाजन तथा पाकिस्तान के रूप में एक अलग राष्ट्र की माँग के लिए कांग्रेस पर दबाव डालना शुरू किया। इसी प्रसंग में नागर जी ने लिखा है कि– 'प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमण्डलों के गठन के बाद जिन्ना ने धुआँधार कांग्रेस विरोधी प्रचार से मुसलमानों की राजनैतिक मानसिकता को बदल दिया। लखनऊ मुस्लिम कांफ्रेंस के दो–तीन महीनों बाद ही लीग की एक सौ सत्तर शाखाएं देश में स्थापित हो गईं जिनमें नब्बे यू. पी. में थी एवं चालीस पंजाब में और एक लाख सदस्य अकेले यूपी से ही बन गए।'[21] अतः जिन्ना ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के इशारे पर साम्प्रदायिकता का ऐसा बीज बोया, जिसकी फसल के रूप में भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्र बने।

भारत में साम्प्रदायिकता को पोषित और फलित करने में जितना योगदान 'मुस्लिम लीग' का था उतना ही योगदान 'हिन्दू महासभा' का भी। इसीलिए नागर जी ने हिन्दू महासभा को भी साम्प्रदायिकता फैलाने के लिए उतना ही दोषी माना है जितना मुस्लिम लीग को। उनका मानना है कि भले ही 'मुस्लिम लीग' की प्रतिक्रिया स्वरूप ही हिन्दू महासभा का जन्म हुआ हो, लेकिन राष्ट्र को विभाजित करने में हिन्दू महासभा का भी योगदान है। इसलिए दोनों ही संस्थाएँ इसके लिए बराबर की भागीदार है। इसका तुलनात्मक अध्ययन करते हुए नागर जी ने लिखा है कि– ''इधर जिन्ना के नेतृत्व में मुसलमान राष्ट्र से अपने को अलग कर रहे थे, उधर हिन्दू महासभा उनकी पृथक्वादिता पर अपना रोष प्रकट कर रही थीं।.... उधर कांग्रेस और हिन्दू महासभा के धर्म–निरपेक्षता और धर्म–सापेक्षता के स्वर अधिकाधिक स्पष्ट होते जा रहे थे। हिन्दू महासभा के वीर सावरकर ने कहाः ''समान भाव में बंधे हुए भारत की परिकल्पना मृगतृष्णा के समान है। हिन्दू–मुस्लिमों के बीच की दरार एक कड़वा सत्य है। हिन्दुस्तान हिन्दुओं का राष्ट्र है, उनकी भूमि है, भारत सिर्फ एक देश हो सकता है, वह है हिन्दू देश। मुसलमान यहाँ अल्पसंख्यक हैं और उन्हें भारत के एक प्रदेश में ही शरण लेनी होगी, जहाँ वे धर्म जाति की समस्त बेड़ियों से मुक्त होकर स्वतंत्र नागरिकों की तरह जीवनयापन करेंगे।''[22] सावरकर जी के इस विचार ने मुस्लिम लीग के प्रतिरोध को और बढ़ावा दिया तथा ब्रिटिश साम्राज्य के संरक्षण में वे अलगाववाद की तरफ बढ़े। अंततः भारत का विभाजन हो गया तथा द्वि–राष्ट्र के सिद्धांत की परिकल्पना को साकार होने का मौका मिला।

निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता का अपना एक तर्क होता है और उसे शुरू में ही न रोका जाए तो, उसका बढ़ना और उग्रवादी हो जाना अनिवार्य हो जाता है–'इस अवधारणा का उदाहरण सर सैय्यद अहमद, मुहम्मद अली जिन्ना और वीर सावरकर आदि हैं। इनके उदाहरण से यह साफ हो जाता

है कि साम्प्रदायिकता एक ढ़लान रास्ता है और अवरोध के विशेष प्रयत्न न किए जाएं तो आदमी उस पर फिसलता हीं जाता है।'[23] और स्थिति तब भयानक हो जाती है जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद जैसा भयानक घृणित षडयंत्रकारी उसको धक्का दे दे तो परिणाम केवल एक हीं होता है– जो भारत का हुआ। साम्प्रदायिकता ने भय और घृणा के जो बीज बोए थे उससे न केवल 'राष्ट्र' का विभाजन हुआ, अपितु उनकी फसल बड़े पैमाने पर काटी गई। जिसमें लाखों लोगों की जानें गई और अरबों की सम्पत्ति नष्ट हुई। यह सिलसिला लगातार आज भी चल रहा है, अगर इस पर तुरन्त लगाम नहीं लगाई गई तो भविष्य में इसके भयावह परिणाम होंगे।

सन्दर्भ ग्रंथ

1.प्रभा दीक्षित : मीडिया,;पत्रिका,अप्रैल–जून 2007,पृ.22

2.अमृतलाल नागर : पीढ़ियां,पृ.147

3.वही,पृ.155

4.वही,पृ.148

5.वही,पृ.341

6.बिपिन चंद्र : भारत का स्वत़ंत्रता संघर्ष,पृ.333

7.अमृतलाल नागर : पीढ़ियां,पृ.148

8.वही,पृ.155

9.वही,पृ.148

10.देवेन्द्र चौबे : कथाकार अमृतलाल नागर,पृ.80

11.अमृतलाल नागर : पीढ़ियां,पृ.149

12.वही,पृ.154

13.वही,पृ.154

14.वही,पृ.155

15.बिपिन चंद्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,पृ. 338

16.अमृतलाल नागर : पीढ़ियां,पृ.325

17.वही,पृ.326

18.वही,पृ.357

19.बिपिन चंद्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,पृ. 335

20.अमृतलाल नागर : पीढ़ियां,पृ.352

21.वही,पृ.352–353

22.वही,पृ.353

23.बिपिन चंद्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,पृ. 346